अथ षोडशं काण्डम्

अथैकत्रिंशः प्रपाठकः

अथ प्रथमोऽनुवाकः १. [प्रथमं सूक्तम्]

१. 'अथर्वा' का भाव है 'न डाँवाडोल होनेवाला' (अथर्वा) तथा 'अथ अर्वाङ्' अपने अन्दर देखनेवाला—आत्मनिरीक्षण करनेवाला। यह आत्मनिरीक्षण करता हुआ अनुभव करता है कि—

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीबृहती**॥

प्रभु+'माता-पिता-आचार्य'

अतिसृष्टो अपां वृषभोऽतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः॥ १॥

१. मैंने **अपां वृषभः**=(आपो नारा इति प्रोक्ताः) नर-समूह पर सुखों का वर्षण करनेवाले प्रभु को **अतिसृष्टः**=(to part with, abandon, dismiss) छोड़ दिया—ध्यान द्वारा प्रभु-सम्पर्क-प्राप्त करने का विचार नहीं किया। इतना ही नहीं, **अग्नयः**=माता-पिता व आचार्यरूप अग्नियों को भी (पिता वै गार्हपत्योऽग्निः मातान्निर्दक्षिणः स्मृतः। गुरुराहवनीयस्तु साग्नित्रेता गरीयसी। —मनु०) **अतिसृष्टः**=छोड़ दिया। उनके निर्देशों के अनुसार चलने के लिए यत्न नहीं किया। **दिव्याः**=ये अग्नियाँ तो दिव्य थीं। इन्होंने ही तो मेरे जीवन को प्रकाशमय बनाया था। इनसे दूर होकर मेरा जीवन अन्धकारमय हो गया।

भावार्थ—प्रभु का ध्यान तथा माता-पिता व आचार्य की प्रेरणाएँ हमारे जीवनों को प्रकाशमय व सुखी बनाती हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**याजुषीत्रिष्टुप्**॥

रुजन्-मृणन्

रुजन्परिरुजन्मृणन्प्रमृणन्॥ २॥

१. माता, पिता व आचार्यों की प्रेरणाओं को न सुनने पर तथा प्रभु-ध्यान को छोड़ने से जीवन की स्थिति विकृत और अतिविकृत हो गई। **रुजन्**=मैंने अपने शरीर को रुग्ण कर लिया। **परिरुजन्**=शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में मैं शक्तिभंग का कारण बना। जीवन के विलासमय हो जाने से शक्ति-विनाश तो होना ही था। २. **मृणन्**=(to slay) मैं मन के सब उत्तमभावों का हिंसन करनेवाला बना। **प्रमृणन्**=मैंने दिव्यभावों को पूर्णतया नष्ट ही कर डाला।

भावार्थ—प्रभु के ध्यान से तथा 'माता पिता व आचार्य की प्रेरणा' से दूर होने पर शरीर व्याधियों का तथा मन आधियों का शिकार हो जाता है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीबृहती**॥

आत्मदूषिः—तनूदूषिः

म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः॥ ३॥

१. उत्तम प्रेरणाओं के अभाव में मन बड़ा अशान्त हो जाता है। यह 'कामवासना' का शिकार होता है। यह 'काम' **म्रोकः**=(म्रुच् to go, to move) मन को अतिशयेन चञ्चल व

अशान्त कर देता है। **मनोहा**=मन को मार ही डालता है, चिन्तन की शक्ति रह ही नहीं जाती—उत्साह नहीं रहता। **खनः**=(खनु अवदारणे) शरीर की सब शक्तियों का भी यह अवदारण कर देता है। **निर्दाहः**=वासना के सन्ताप से यह सदा जलता रहता है। २. **आत्मदूषिः**=यह काम मन को तो दूषित करता ही है **तनूदूषिः**=शरीर को भी दूषित कर डालता है। यह मदन (कामदेव) 'मन्मथ' है—चेतना को नष्ट करनेवाला है और 'मार' है—शरीर की शक्तियों को नष्ट करके मार ही डालता है।

भावार्थ—कामवासना जीवन में अशान्ति व अज्ञान पैदा करती है। यह शक्तियों का अवदारण करके हृदय में जलन का कारण बनती है। यह मन व शरीर को दूषित करती है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**आसुरीगायत्री**॥

'काम' विनाश

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि॥ ४॥

१. **इदम्**=(इदानीम्) अब मैं **तम्**=शरीर व मन को दूषित करनेवाले उस काम को **अतिसृजामि**= सुदूर छोड़ता हूँ। **तम्**=उस 'काम' को मैं **मा**=मत **अभ्यवनिक्षि**=परिचुम्बित करूँ (निक्ष् to kiss)। इस कामवासना के प्रति मेरा स्नेह न हो। इसे अपना सर्वमहान् शत्रु जानकर मैं इसे नष्ट करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—शरीर व मन को दूषित करनेवाली इस कामवासना को हम दूर से ही प्रणाम करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीपङ्क्तिः**॥

सर्वमहान् शत्रु

तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः॥ ५॥

१. **यः**=जो यह 'काम'-रूप शत्रु **अस्मान् द्वेष्टिः**=हमारे साथ प्रीति नहीं करता और **यम्**=जिसको **वयम्**=हम भी **द्विष्मः**=प्रिय नहीं जानते, **तेन**=उस हेतु से **तम्**=उस काम को **अतिसृजामः**=सुदूर छोड़ने के लिए यत्नशील होते हैं। यह हमारे विनाश का कारण बनता है। आत्मविनाश से बचने के लिए काम का परित्याग आवश्यक ही है।

भावार्थ—कामरूप शत्रु हमारे साथ कभी प्रीति नहीं कर सकता। इसे दूर करना आवश्यक ही है।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**साम्न्यनुष्टुप्**॥

कर्म+ज्ञान

अपामग्रमसि समुद्रं वोऽभ्यवसृजामि॥ ६॥

१. काम को जीतने के लिए दो मार्ग हैं। उन्हीं का संकेत प्रभु इस रूप में करते हैं कि **अपाम् अग्रम् असि**=(अप् कर्म) तू कर्मों के अग्रभाग में है, अर्थात् कर्मशील पुरुषों का मुखिया है तथा **वः**=तुम्हें **समुद्रम् अभि**=ज्ञान के समुद्र की ओर **अवसृजामि**=भेजता हूँ, अर्थात् तुम अपना सारा खाली समय ज्ञान-प्राप्ति में ही लगाने का ध्यान करो। ज्ञान अनन्त है। (अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रम्)। ज्ञानप्राप्ति में लगे रहने पर काम ज्ञानग्नि में भस्म ही हो जाएगा। कर्मों में लगे रहने से काम को हमपर आक्रमण का अवसर ही न मिलेगा।

भावार्थ—कामवासना से आक्रान्त न होने का सुन्दरतम उपाय यही है कि हम कर्मों में लगे रहें तथा सारे खाली समय का उपयोग ज्ञान-प्राप्ति में करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**निचृद् [द्विपदा] विराड्गायत्री**॥

'म्रोक-खनि' काम

योऽ३प्स्वा१ग्निरति तं सृजामि म्रोकं खनिं तनूदूषिम्॥ ७॥

१. **यः**=जो **अप्सु**=(आपो नारा इति प्रोक्ताः) प्रजाओं में यह **अग्निः**=कामाग्नि उत्पन्न हो जाता है। यह 'मनसि-ज' है—भौतिक सौन्दर्य को देखकर मन में उत्पन्न हो ही जाता है। **तम् अति सृजामि**=उसको मैं कर्मों में व ज्ञान-प्राप्ति में लगे रहकर सुदूर परित्यक्त करता हूँ। २. उस कामाग्नि को दूर करता हूँ जोकि **म्रोकम्**=जीवन को बड़ा अशान्त बनाता है। **खनिम्**=शक्तियों का अवदारण कर देता है तथा **तनूदूषिम्**=शरीर को दूषित ही कर डालता है।

भावार्थ—हृदय में उत्पन्न हो जानेवाली इस कामाग्नि को हम ज्ञान व कर्म में व्यापृत रहकर दूर करते हैं। इसने ही तो हमारे जीवन को अशान्त बनाया हुआ था, शक्तियों को विनष्ट कर दिया था तथा सारे शरीर को ही दूषित कर दिया था।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**द्विपदासाम्नीपङ्क्तिः**॥

कामाग्नि का भयंकर परिणाम

यो वः आपोऽग्निराविवेश स एष यद्वो घोरं तदेतत्॥ ८॥

१. हे **आपः**=प्रजाओ! **यः**=जो **अग्निः**=कामाग्नि **वः अविवेशः**=तुममें प्रविष्ट हो गया है **सः एव**=वही—वह कामाग्नि ही **यत् वः घोरम्**=जो तुम्हारे लिए भयंकर है, **तत् एतत्**=वह सब यही है। शरीर में, मन में व मस्तिष्क में जो कुछ भी भयंकर विकार आता है, वह सब इस कामाग्नि के कारण है।

भावार्थ—हम ज्ञान-प्राप्ति में व कर्मों में लगे रहकर कामाग्नि को शान्त करें। अन्यथा 'शरीर, मन व मस्तिष्क' पर इसका परिणाम अति भयंकर होगा।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**आसुरीपङ्क्तिः**॥

इन्द्र का इन्द्रिय से अभिषेचेन

इन्द्रस्य व इन्द्रियेणाभि षिञ्चेत्॥ ९॥

१. उल्लिखित मन्त्र के अनुसार कामाग्नि का शमन **वः**=तुम्हें **इन्द्रस्य**=एक जितेन्द्रिय पुरुष के **इन्द्रियेण**=वीर्य व बल से **अभिषिञ्चेत्**=सिक्त करे। कामाग्नि के शमन से शरीर में शक्ति सुरक्षित रहती है। यह शक्ति प्रत्येक इन्द्रिय को उस-उस सामर्थ्य से सम्पन्न करती है।

भावार्थ—हम कामाग्नि को शान्त करके वीर्यरक्षण द्वारा इन्द्रियों को शक्ति-सम्पन्न बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**याजुषीत्रिष्टुप्**॥

'अरिप्राः' आपः

अरिप्रा आपो अप रिप्रमस्मत्॥ १०॥

१. **आपः** (आपः रेतो भूत्वा०)=कामाग्नि के शमन से शरीर में सुरक्षित हुए रेतःकण **अरिप्राः**=निर्दोष हैं (रिप्रम् sin)। शरीर में रेतःकणों का रक्षण होने पर किसी प्रकार की अपवित्रता (Impurity रिप्रम्) उत्पन्न नहीं होती। २. ये सुरक्षित रेतःकण **अस्मत्**=हमसे **रिप्रम् अप**=पापों व अपवित्रता को दूर करें। शरीर में सुरक्षित रेतःकण जहाँ शरीर को पवित्र व निर्मल और अतएव नीरोग रखते हैं, वहाँ ये मन को पापभावना से आक्रान्त नहीं होने देते।

भावार्थ—कामाग्नि का शमन हममें रेतःकणों का रक्षण करे। ये सुरक्षित रेतःकण हमें नीरोग

व निर्मल बनाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**साम्न्युष्णिक्**॥

'एनस् व दुःष्वप्न्य' का दूरीकरण

प्रास्मदेनो॑ वहन्तु प्र दुःष्वप्न्यं॑ वहन्तु॥ ११॥

१. शरीर में सुरक्षित रेतःकण **अस्मत्**=हमसे **एनः प्रवहन्तु**=पाप को दूर बहा ले-जाएँ। केवल पाप को ही नहीं, **दुःष्वप्न्यम्**=अशुभ स्वप्नों के कारणभूत सब पापों व अशुभ विचारों को **प्रवहन्तु**=दूर ले-जाएँ।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित रेतःकण हमारे जीवन से पापों व अशुभ स्वप्नों के कारणभूत अशुभ विचारों को दूर ही रखते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**[द्विपदा] आर्च्यनुष्टुप्**॥

शिवचक्षु

शि॒वेन॑ मा॒ चक्षु॑षा पश्यतापः शि॒वया॑ त॒न्वोप॑ स्पृशत॒ त्वच॑ं मे॥१२॥

१. हे **आपः**=शरीर में सुरक्षित रेतःकणो! तुम **मा**=मुझे **शिवेन चक्षुषा पश्यत्**=कल्याणकारिणि दृष्टि से देखो। तुम्हारे द्वारा मेरा कल्याण हो—मेरी चक्षु आदि सब इन्द्रियाँ ठीक बनी रहें। यही तो 'सु-ख' है—इन्द्रियों का (ख) उत्तम होना (सु)। २. हे आप! तुम **मे त्वचम्**=मेरी त्वचा को **शिवया तन्वा**=कल्याणयुक्त शरीर से **उपस्पृशत**=स्पृष्ट करो, अर्थात् इन सुरक्षित रेतःकणों द्वारा मेरा शरीर कल्याणयुक्त हो और वह सुन्दर त्वचा से आवृत हुआ रहे।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित रेतःकण चक्षु आदि सब इन्द्रियों की शक्ति को ठीक बनाये रखते हैं और नीरोग शरीर को नीरोग त्वचा से आवृत किये रहते हैं।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**[द्विपदा] आर्च्यनुष्टुप्**॥

क्षत्रं+वर्चः

शि॒वान॒ग्नीन॑प्सुषदो॑ हवामहे॒ मयि॑ क्ष॒त्रं वर्च॒ आ ध॑त्त देवीः॥ १३॥

१. हम कामाग्नि को शान्त करके उन **शिवान् अग्नीन्**=कल्याणकारिणी 'तेजस्विता-स्नेह व ज्ञान' की अग्नियों को **हवामहे**=पुकारते हैं, जोकि **अप्सुषदः**=इन सुरक्षित रेतःकणों में आसीन होनेवाली हैं। रेतःकणों के रक्षण से शरीर में तेजस्विता की अग्नि, हृदय में स्नेह की अग्नि तथा मस्तिष्क में ज्ञान की अग्नि का प्रादुर्भाव होता है। २. हे **देवीः**=रेतःकणरूप दिव्यगुणों से युक्त जलो! **मयि**=मुझमें **क्षत्रम्**=क्षतों से त्राण करनेवाले बल को तथा **वर्चः**=रोगों का निवारण करनेवाली प्राणशक्ति को **आधत्त**=स्थापित करो।

भावार्थ—शरीर में सुरक्षित रेतःकण हमें 'क्षत्र व वर्चस्' प्राप्त कराते हैं। इनमें ही 'तेजस्विता, स्नेह व ज्ञान' की अग्नियाँ निहित हैं।

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वाक्**॥ छन्दः—**आसुर्यनुष्टुप्**॥

मधुरवाणी

निर्दु॑र्म॒ण्य ∫ ऊ॒र्जा मधु॑मती॒ वाक्॥ १॥
मधु॑मती स्थ॒ मधु॑मती॒ं वाच॑मुदेयम्॥ २॥

१. गतसूक्त के भाव के अनुसार कामाग्नि के शान्त होने पर तथा रेतःकणों के रक्षित होने

पर **दुःअर्मण्यः** (a disease of the eye)=जीवन को दुःखमय बनानेवाला आँख का रोग **निः**=हमसे दूर हो। ये रेतःकण हमें 'शिवचक्षु' प्राप्त कराएँ। हम आँखों से मृदु को ही देखें। न हमारी आँखें अभद्र को देखें और न ही हम अशुभ वाणी बोलें। हमारी **वाक्**=वाणी **ऊर्जा**=बल व प्राणशक्ति के साथ **मधुमतीः**=अत्यन्त माधुर्य को लिये हुए हो। २. हे शरीरस्थ रेतःकण! (आपः) तुम **मधुमतीः स्थ**=अत्यन्त माधुर्यवाले हो—शरीर में सुरक्षित होकर तुम सारे जीवन को मधुर बनाते हो। तुम्हारा रक्षण होने पर **मधुमतीं वाचम् उदेयम्**=अत्यन्त मधुर ही वाणी को बोलूँ।

भावार्थ—रेतःकणों के रक्षण के द्वारा हमारे चक्षु आदि इन्द्रियों के रोग दूर हों। हम शिव ही देखें और हमारी वाणी ओजस्विनी व मधुर हो। रेतःकण हमारे जीवन को अतिशयेन मधुर बनाते हैं। मैं मधुर ही वाणी बोलूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वाक्**॥ छन्दः—**साम्न्युष्णिक्**॥

गोपाः—गोपीथः

उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः॥ ३॥

१. जीवन को ठीक बनाये रखने के लिए **मे**=मेरे द्वारा **गोपाः**=वह इन्द्रियों का रक्षक प्रभु **उपहूतः**=पुकारा गया है। मैं प्रभु की आराधना करता हूँ और इसप्रकार अपनी इन्द्रियों को विषयों से बद्ध नहीं होने देता। इसी उद्देश्य से **गोपीथः**=(पीथः=drink) ज्ञान की वाणियों का पान **उपहूतः**=पुकारा गया है। मैं ज्ञान की वाणियों के पान के लिए प्रार्थना करता हूँ। 'प्रभु-स्मरण व ज्ञान की वाणियों का पान' ये ही दो साधन हैं, जो मेरे जीवन को मधुर बनाते हैं।

भावार्थ—हम प्रभु का आराधन करें और ज्ञान की वाणियों के पान में तत्पर रहें। इसप्रकार हम अपने जीवन को मधुर बना पाएँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वाक्**॥ छन्दः—**त्रिपदासाम्नीबृहती**॥

भद्र-श्रवण

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम्॥ ४॥

१. हे प्रभो! आपके अनुग्रह से **कर्णौ सुश्रुतौ**=मेरे कान उत्तम श्रवणशक्ति से सम्पन्न हों। श्रवणशक्ति में किसी प्रकार की कमी न हो जाए। ये **कर्णौ**=कान **भद्रश्रुतौ**=सदा भद्र बातों को ही सुननेवाले हों। श्रवणशक्ति का प्रयोग सदा कल्याणी वाणियों के श्रवण के लिए ही हो। २. हे प्रभो! आपका स्मरण करता हुआ मैं सदा **भद्रं श्लोकम्**=कल्याणकर पद्यों को ही **श्रूयासम्**=सुनूँ। ज्ञान की शुभवाणियाँ ही मेरे कानों का विषय बनें। '**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः**'।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हमारे कानों की शक्ति ठीक बनी रहे और हम उनसे सदा भद्र वाणियों का ही श्रवण करें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वाक्**॥ छन्दः—**आर्च्यनुष्टुप्**॥

सुश्रुति+उपश्रुति

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः॥ ५॥

१. हे प्रभो! **सुश्रुतिः च**=उत्तम श्रवण-शक्ति तथा **उपश्रुतिः च**=आचार्यों के समीप रहकर श्रवण **मा**=मुझे **मा हासिष्टाम्**=मत छोड़ जाएँ। मैं सदा उत्तम श्रवणशक्तिवाला होऊँ और ज्ञानियों के चरणों में उपस्थित होकर ज्ञान की वाणियों का श्रवण करूँ। २. **सौपर्णं चक्षुः**=सुपर्ण (गरुड़) की दृष्टि हमें प्राप्त हो—हम दूर तक देख सकें। अथवा **सौपर्णम्**=उत्तमता से पालन व पूरण

करनेवाली दृष्टि हमें प्राप्त हो और **अजस्रं ज्योतिः**=हमारी ज्ञान की ज्योति निरन्तर दीप्त रहे—हम स्वाध्याय से कभी पराङ्मुख न हों।

भावार्थ—हमारी कान की शक्ति ठीक रहे, हम सदा आचार्यचरणों में ज्ञानचर्चाओं को सुनें। दूरदृष्टि बनें, स्वाध्याय में कभी विच्छेद न होने दें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**वाक्**॥ छन्दः—**निचृद् [द्विपदा] विराड्गायत्री**॥

ऋषि-प्रस्तर

ऋषीणां प्रस्तरो ऽसि नमो ऽस्तु दैवाय प्रस्तराय॥ ६॥

१. उल्लिखित मन्त्रों की भावना के जीवन में अनूदित होने पर यह **प्रस्तरः**=पत्थर के समान दृढ़ शरीर (अश्मा भवतु नस्तनूः) **ऋषीणाम्**=ऋषियों का शरीर हो जाता है। 'सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे'=इस शरीर में सात ऋषि (कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्) प्रभु ने रक्खे ही हैं। हे मेरे शरीर! तू ऋषियों का **प्रस्तरः**=प्रस्तर **असि**=है। २. **दैवाय**=उस महान् देव से दिये गये अथवा उस महान् देव की प्राप्ति के साधनभूत इस **प्रस्तराय**=प्रस्तर-तुल्य शरीर के लिए **नमः अस्तु**=उचित आदर का भाव हो। इसकी शक्तियों को हम पवित्र समझें, उन्हें कभी विनष्ट न होने दें। इस शरीर के प्रति आदर का भाव होने पर हम इसकी शक्तियों को भोग-विलास में व्ययित न करेंगे।

भावार्थ—इस शरीर को हम ऋषियों का आश्रम समझें। इसे देव-मन्दिर जानकर इसमें प्रभु का पूजन करें। इसकी शक्तियों को विलास में विनष्ट न कर डालें।

इसप्रकार इस शरीर को 'ऋषियों का आश्रम' व 'दैव-मन्दिर' बनानेवाला व्यक्ति 'ब्रह्मा' बनता है—सर्वमहान्। अगले दो सूक्त इस ब्रह्मा के ही हैं—

३. [तृतीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**आसुरीगायत्री**॥

मूर्धा

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्॥ १॥

१.ब्रह्मा यह कामना करता है कि **अहम्**=मैं **रयीणाम्**=ऐश्वर्यों का—अन्नमय आदि कोशों की सम्पत्ति का—'तेज-वीर्य-बल व ओज-मन्यु (ज्ञान) तथा सहस् (सहनशक्ति)' का—**मूर्धा**=शिखर **भूयासम्**=होऊँ। मैं तेजस्विता आदि गुणों में अग्रणी बनूँ। २. **समानानाम्**=अपने समान लोगों में मैं **मूर्धा**=शिखर पर स्थित होऊँ। ब्राह्मण हूँ तो ब्राह्मणों में सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी बनूँ। क्षत्रिय हूँ तो बल में सब क्षत्रियों को पराजित करनेवाला होऊँ। वैश्य हूँ तो अत्यधिक कमानेवाला व देनेवाला बनकर वैश्यों का मूर्धन्य बनूँ।

भावार्थ—मैं अन्नमय आदि कोशों के ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवालों में शिरोमणि होऊँ। अपने समान लोगों का अग्रणी बनूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**आर्च्यनुष्टुप्**॥

रुजः-वेनीः

रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्टां मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम्॥ २॥

१. **रुजः च** (रुजो भंगे)=शत्रुओं का विदारण **वेनः च**=और प्रभु का पूजन (वेन्=worship) **मा**=मुझे **मा हासिष्टाम्**=मत छोड़ जाएँ। मैं सदा प्रभु का पूजन करनेवाला बनूँ और

प्रभु-पूजन द्वारा काम-क्रोधादि शत्रुओं का विदारण करूँ। २. **मूर्धा च**=मस्तिष्क **च**=और **विधर्मा च**=विशिष्ट धारणशक्ति **मा**=मुझे **मा हासिष्टाम्**=मत छोड़ जाएँ। ज्ञान मुझे धारण-शक्ति-सम्पन्न बनाए। ज्ञान के अभाव में ही मनुष्य धारणशक्ति से रहित होकर 'पा-गल' हो जाता है। (पा=रक्षण, गल=च्युत)।

भावार्थ—मैं जीवन में प्रभुपूजन करता हुआ शत्रुओं का विदारण करनेवाला बनूँ तथा मस्तिष्क को स्वस्थ रखता हुआ ज्ञान द्वारा विशिष्ट धारणशक्तिवाला होऊँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**आर्च्यनुष्टुप्**॥

उर्वः-चमसः

उर्वश्च॑ मा चम॒सश्च॒ मा हा॑सिष्टां ध॒र्ता च॑ मा ध॒रुण॑श्च॒ मा हा॑सिष्टाम्॥ ३॥

१. **उर्वः च**=(उर्वति to kill) शत्रुओं का संहार **च**=तथा **चमसः**=(चमसः=सोमपानपात्र, व जौ-चावल की बनी रोटी) सोमपानपात्र **मा**=मुझे **मा हासिष्टाम्**=मत छोड़ जाएँ अथवा जौ चावल की रोटी मुझे न छोड़ जाए, अर्थात् मैं सदा काम-क्रोधादि शत्रुओं का संहार करनेवाला बनूँ। इनका संहार करता हुआ मैं शरीर में सोम (वीर्य) का पान करनेवाला बनूँ तथा इसी उद्देश्य से सदा जौ-चावल आदि सात्त्विक अन्नों का सेवन करूँ। २. **धर्ता च**=वह सबका धारक प्रभु **च**=और **धरुणः**=स्वर्ग (Heaven) **मा**=मुझे **मा हासिष्टाम्**=मत छोड़ जाएँ। प्रभु से धारण किया जाता हुआ मैं सदा स्वर्ग में निवास करूँ।

भावार्थ—काम-क्रोधादि शत्रुओं का संहार करके मैं शरीर को सोम (वीर्य) के पान का पात्र बनाऊँ। प्रभु से धारण किया जाता हुआ मैं सदा स्वर्ग में निवास करूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**प्राजापत्यात्रिष्टुप्**॥

आर्द्रपविः-आर्द्रदानुः

वि॒मोकश्च॑ मा॒र्द्रप॑विश्च॒ मा हा॑सिष्टामा॒र्द्रदा॑नुश्च मा मा॒तरिश्वा॑ च॒ मा हा॑सिष्टाम्॥ ४॥

१. **विमोकः च**=काम-क्रोधादि शत्रुओं से छुटकारा **च**=और **आर्द्रपविः**=शत्रुरुधिर से क्लिन्न वज्र **मा**=मुझे **मा हासिष्टाम्**=मत छोड़ जाएँ, अर्थात् मैं काम आदि से सदा मुक्त रहूँ और अपने क्रियाशीलतारूप वज्र के द्वारा शत्रुओं का संहार करनेवाला बनूँ। २. **आर्द्रदानुः च**=स्नेहार्द्र हृदय से युक्त दानवृत्ति **च**=और **मातरिश्वा**=वेदमाता में गति व वृद्धि, अर्थात् वेद की प्रेरणा के अनुसार कार्यों को करते हुए उन्नत होना **मा**=मुझे **मा हासिष्टाम्**=मत छोड़ जाएँ। मैं दानवृत्ति व वेदानुकूल आचरण को अपनानेवाला बनूँ।

भावार्थ—'काम-क्रोध आदि शत्रुओं से छुटकारा', 'क्रियाशीलतारूप व्रज द्वारा शत्रुसंहार', 'स्नेहपूर्वक दानवृत्ति', तथा 'वेदानुकूल आचरण' ये बातें सदा मेरे जीवन में हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**५ साम्न्युष्णिक्, ६ द्विपदासाम्नीत्रिष्टुप्**॥

असन्तापं मे हृदयम्

बृह॒स्पति॑र्म आ॒त्मा नृम॒णा नाम॒ हृद्यः॥ ५॥

अस॑ंता॒पं मे॒ हृद॑यमु॒र्वी गव्यू॑तिः समु॒द्रो अ॑स्मि॒ विध॑र्मणा॥ ६॥

१. **बृहस्पतिः**=वह ज्ञान का स्वामी प्रभु **मे आत्मा**=मेरी आत्मा है—मुझमें प्रभु का निवास है। मैं भी प्रभु के शरीर के समान हूँ। वह प्रभु **नृमणा नाम**='नृमणा' नामवाला है—'नृषु मनो यस्य' उन्नति-पथ पर चलनेवालों में मनवाला है, उनका सदा ध्यान करनेवाला है। वे प्रभु **हृद्यः**=हम सबके हृदयों में निवास करनेवाले हैं। २. इस प्रभु का स्मरण करते हुए **मे**=मेरा

हृदयम्=हृदय **असंतापम्**=सन्तापशून्य है। **गव्यूतिः उर्वी**=इन्द्रियरूप गौओं का प्रचारक्षेत्र विशाल है, अर्थात् मेरी इन्द्रियाँ दूर-दूर के विषयों का भी ज्ञान प्राप्त करनेवाली हैं और विशालहित के साधक कर्मों को करने में तत्पर हैं। **विधर्मणा**=विशिष्ट धारणशक्ति के द्वारा मैं **समुद्रः अस्मि**=सदा आनन्दमय (स-मुद्) जीवनवाला हूँ अथवा समुद्र जैसे सब रत्नों का आधार है, उसीप्रकार मैं भी धारणात्मक कर्मों का आधार बनता हूँ।

भावार्थ—प्रभु को मैं अपनी आत्मा जानूँ। वे प्रभु हमारा ध्यान करनेवाले हैं। हमारे हृदयों में उनका वास है। इस प्रभु का स्मरण करता हुआ मैं सन्तापशून्य हृदयवाला, विशाल दृष्टिकोणवाला तथा धारणात्मकशक्ति से आनन्दमय जीवनवाला बनूँ।

४. [चतुर्थं सूक्तम्]

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**साम्न्यनुष्टुप्**॥

नाभिः

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम्॥ १॥

१. **अहम्**=मैं **रयीणाम्**=सब ऐश्वर्यों का **नाभिः**=अपने में बाँधनेवाला बनूँ। इसीप्रकार **समानानाम्**=अपने समान जातिवालों का भी **नाभिः भूयासम्**=केन्द्र बन पाऊँ। उन सबमें मैं श्रेष्ठ बनूँ। सब मुझे ही नेता के रूप में देखें।

भावार्थ—हम सब कोशों के ऐश्वर्यों का सम्पादन करते हुए अपने वर्ग में श्रेष्ठतम स्थान में पहुँचने के लिए यत्नशील हों।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**साम्न्युष्णिक्**॥

सूषाः

स्वासदसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा॥ २॥

१. **स्वासत् असि** (स्व आ सत्)=तू सब ओर से इन्द्रिय-वृत्तियों को प्रत्याहृत करके अपने में आसीन होनेवाला है। प्रतिदिन ध्यान में स्थित होकर आत्मनिरीक्षण करने की प्रवृत्तिवाला है और इसलिए **सूषाः**=(सु उष्) दोषों को सम्यक् दग्ध करनेवाला है (उष दाहे)। दोषों को दग्ध करके तू **मर्त्येषु**=मरणधर्मा पुरुषों में **अमृतः**=अमृत बना है। न तो तू विषयों के पीछे मारा-मारा फिरता है (अ मृत) और न ही तू रोगों का शिकार होता है (एकशतं मृत्यवः)। संसार में फैले हुए सैकड़ों रोगों का तू शिकार नहीं होता।

भावार्थ—हम प्रतिदिन अपने अन्दर आसीन होनेवाले हों—आत्मनिरीक्षण करें और दोषों को दग्ध करके अमृत बनें।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**साम्न्यनुष्टुप्**॥

प्राणापान

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानो ऽव्हाय परा गात्॥ ३॥

१. आत्मनिरीक्षण करनेवाला व्यक्ति युक्ताहार-विहार करनेवाला बनता है। युक्ताहार-विहारवाला होता हुआ यह प्रार्थना करता है कि **माम्**=मुझे **प्राणः**=प्राणशक्ति **मा हासीत्**=मत छोड़ जाए। **उ**=और **अपानः**=अपानशक्ति भी **माम्**=मुझे छोड़कर **मा परागात्**=दूर मत चली जाए। २. प्राणशक्ति ने ही तो शरीर में बल का संचार करना है तथा अपान ने सब दोषों का निराकरण करके हमें स्वस्थ बनाना है।

भावार्थ—आत्मनिरीक्षण करते हुए मैं युक्ताहार-विहारवाला बनूँ तथा वासनाओं को विनष्ट

करता हुआ अपनी प्राणापानशक्ति को सुरक्षित रक्खूँ।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**त्रिपदाऽनुष्टुप्**॥

रक्षण

सूर्यो माह्नः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद्यमो मनुष्ये ऽभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः॥ ४॥

१. **सूर्यः**=सूर्य **मा**=मुझे **अह्नः पातु**=अहन् (दिन) से रक्षित करे। जहाँ तक सम्भव हो मैं दिनभर सूर्य के सम्पर्क में अपने कार्यों को करनेवाला बनूँ। सूर्य की भाँति ही निरन्तर क्रियाशील रहूँ। (अ+हन्) एक क्षण को भी आलस्य में अपव्ययित न करूँ। **अग्निःपृथिव्याः**=अग्नि पृथिवी से मुझे रक्षित करे। प्रातः-सायं अग्नि-परिचर्या (अग्निहोत्र) करता हुआ मैं शरीररूप पृथिवी में आ जानेवाले रोगरूप शत्रुओं से बचा रहूँ। **वायुः अन्तरिक्षात्**=वायु अन्तरिक्ष से मुझे रक्षित करे। खुली वायु में जीवन-यापन करता हुआ मैं हृदयान्तरिक्ष को उदार व पवित्र बना पाऊँ। मेरे हृदय में वायु की भाँति ही सदा गतिशीलता का संकल्प बना रहे। २. **यमः**=नियन्ता राजा **मनुष्येभ्यः**=मनुष्यों से मेरा रक्षण करे। शासन-व्यवस्था के ठीक होने से मैं आधिभौतिक कष्टों से बचा रहूँ। मेरा स्वयं का जीवन भी संयमवाला हो। इस संयत जीवन में **सरस्वती**=विद्या की अधिष्ठातृ देवता **पार्थिवेभ्यः**=शरीररूप पृथिवी में उत्पन्न हो जानेवाले पार्थिव कष्टों से मुझे बचाए। स्वाध्याय द्वारा सरस्वती की आराधना मुझे अध्यात्म-कष्टों से रक्षित करनेवाली हो।

भावार्थ—'सूर्य, अग्नि व वायु' का उचित आराधन मुझे आधिदैविक कष्टों से बचाए। उचित शासनव्यवस्था आधिभौतिक कष्टों से बचानेवाली हो तथा सरस्वती का आराधन मुझे अध्यात्म-कष्टों से बचाए।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**आसुरीगायत्री**॥

प्राणसाधना द्वारा दोषदहन

प्राणापानौ मा मा हासिष्टं मा जने प्र मेषि॥ ५॥

१. **प्राणापानौ**=प्राण और अपान **मा**=मुझे **मा हासिष्टं**=मत छोड़ जाएँ। मैं सदा प्राणापान की साधना करनेवाला बनूँ। प्राण की अपान में तथा अपान की प्राण में आहुति देता हुआ प्राणापान यज्ञ को करनेवाला बनूँ। २. इस साधना को करता हुआ मैं **जने**=मनुष्य के विषय में **मा**=मत **प्रमेषि**=भ्रान्त (go astray) हो जाऊँ, अर्थात् मनुष्यों के विषय में किसी प्रकार की ग़लती न करूँ। सदा मानवोचित कार्य ही करनेवाला बनूँ।

भावार्थ—हम प्राणसाधना में प्रवृत्त रहते हुए इन्द्रिय-दोषों को दूर करनेवाले बनें—'तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्'।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्**॥

सर्वः सर्वगणाः

स्वस्त्यद्योषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय॥ ६॥

१. **अद्य**=आज, हे **आपः**=शरीरस्थ रेतःकणरूप जलो! **उषसः दोषसः च**=दिनों व रात्रियों में—दिन के आरम्भ से दिन की समाप्ति तक—**सर्वः**=(whole) सब पूर्ण अङ्गोंवाला, अर्थात् स्वस्थ होता हुआ तथा **सर्वगणाः**='पंचभूतों के गण, पाँच प्राणों के गण, पाँच कर्मेन्द्रियों के गण, पाँच ज्ञानेन्द्रियों के गण' तथा 'मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार व हृदय' रूप अन्तःकरण पञ्चकवाला मैं **स्वस्ति अशीय**=कल्याण को प्राप्त करूँ।

भावार्थ—गतमन्त्र के अनुसार प्राणसाधना के होने पर, वासनारूप दोषों के दूर होने से,

शरीर में रेतःकणों का रक्षण होगा। इनके रक्षण से हम स्वस्थ होंगे, हमारे शरीरस्थ सब पञ्चक बड़े ठीक होंगे। तब प्रातः से सायं तक सारा दिन हम कल्याण-ही-कल्याण का अनुभव करेंगे।

ऋषिः—**अथर्वा**॥ देवता—**ब्रह्मादित्यौ**॥ छन्दः—**त्रिपदाविराड्गर्भाऽनुष्टुप्**॥

मित्रावरुणौ-दक्षम्

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुर्मित्रावरुणौ मे प्राणापानावग्निर्मे दक्षं दधातु॥ ७॥

१. गतमन्त्र से 'आपः' का यहाँ भी अनुवर्तन है। हे आपः (शरीरस्थ रेतःकणो)! **शक्वरी स्थ**=तुम शरीर को शक्तिशाली बनानेवाले हो। इन रेतःकणों के रक्षण से **पशवः** (प्राणः पशवः शत० ७.५.२.६)=प्राण **मा उपस्थेषुः**—मुझे प्राप्त हों। रेतःकणों का रक्षण मेरे प्राणापान को सबल बनाए। २. ये **प्राणपानौ**=प्राण और अपान **मे मित्रावरुणौ**=मुझे पापों व मृत्यु से बचानेवाले (प्रमीतेः त्रयते) तथा मुझे द्वेषशून्य बनानेवाले (वारयति) हैं। प्राणसाधना के होने पर शरीर नीरोग बनता है तथा मन निष्पाप व निर्दोष होता है। ३. इन रेतःकणों का रक्षण होने पर **अग्निः**=शरीर में उचित मात्रा में विकसित हुआ-हुआ अग्नितत्त्व **मे दक्षं दधातु**=मुझमें बल का धारण करे।

भावार्थ—प्राणसाधना द्वारा शरीर में रेतःकणों का रक्षण होता है। इसप्रकार ये प्राणापान हमें 'नीरोग, निर्द्वेष, निष्पाप व शक्तिशाली' बनाते हैं।

प्राणसाधना द्वारा हम इन्द्रियों का संयम करनेवाले 'यम' बनते हैं। अगले सब सूक्तों का (५ से ९ तक) ऋषि 'यम' ही है—

अथ द्वितीयोऽनुवाकः ५. [पञ्चमम् सूक्तम्]

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**१ विराड्गायत्रीबृहती, २ (द्वि०), ३ (तृ०)**॥

ग्राही का पुत्र

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रो ऽसि यमस्य करणः॥ १॥

अन्तकोऽसि मृत्युरसि॥ २॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात्पाहि॥ ३॥

१. हे **स्वप्न**=सोने के समय, गाढ़ निन्द्रा के न होने पर, अन्तःकरण में उत्पन्न होनेवाले स्वप्न! **ते जनित्रं विद्म**=तेरे उत्पत्तिकारण को हम जानते हैं। **ग्राह्याः पुत्रः असि**=तू ग्राही का पुत्र है। वह बीमारी जो हमें पकड़ लेती है 'ग्राही' कहलाती है। इस बीमारी से सामान्य पुरुष दुःखी जीवनवाला होकर रात को भी उस बीमारी के ही स्वप्न देखता है। इसप्रकार यह स्वप्न उसे मृत्यु की ओर ले-जाता है। यह **यमस्य करणः**=यम का करण—साधन बनता है। २. वस्तुतः हे स्वप्न! तू **अन्तकः असि**=अन्त करनेवाला है, **मृत्युः असि**=तू मौत ही है। ३. हे **स्वप्न**=रात्रि में भी व्याकुलता का कारण बननेवाले स्वप्न! **तं त्वा**=उस तुझको **तथा**=उस तेरे अन्तक व मृत्यु के ठीक रूप को हम **संविद्म**=सम्यक् जानते हैं। तुझे ठीक रूप में देखते हैं। जैसा तू है, वैसा तुझे समझते हैं। वैसा समझकर ही प्रार्थना करते हैं कि हे **स्वप्न**=स्वप्न! **सः**=वह तू **नः**=हमें **दुःष्वप्न्यात् पाहि**=दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत रोगों से बचा। न हम ग्राही से पीड़ित हों और न ही अशुभ स्वप्नों को देखें।

भावार्थ—हमें बुरी तरह से जकड़ लेनेवाले रोग ग्राही कहलाते हैं। इनसे पीड़ित होने पर हम अशुभ स्वप्नों को देखते हैं। ये स्वप्न हमें मृत्यु की ओर ले-जाते है। हम प्रयत्न करके ऐसे रोगों से अपने को बचाएँ। परिणामतः अशुभ स्वप्नों से बचकर दीर्घजीवी बनें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—४-६ (प्र०) विराड्गायत्री; ४-७ (द्वि०), ९ प्राजापत्यगायत्री; ४-७ (तृ०), १० द्विपदासाम्नीबृहती; ७ (प्र०) भुरिग्विराड्गायत्री; ८ स्वराड्विराड्गायत्री॥

'दुर्गति, अशक्ति, अनैश्वर्य व पराजय' आदि से बचना

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रो ऽसि यमस्य करणः।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात्पाहि॥ ४॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रो ऽसि यमस्य करणः।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात्पाहि॥ ५॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रो ऽसि यमस्य करणः।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात्पाहि॥ ६॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः।
अन्तकोऽसि मृत्युरसि। तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात्पाहि॥ ७॥
विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रो ऽसि यमस्य करणः॥ ८॥
अन्तकोऽसि मृत्युरसि॥ ९॥
तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुःष्वप्न्यात्पाहि॥ १०॥

१. हे **स्वप्न**=स्वप्न! **ते जनित्रं विद्म**=तेरे उत्पत्ति-कारण को हम जानते हैं। तू **निर्ऋत्याः पुत्रः असि**=दुर्गति (विनाश, decay) का पुत्र है। मृत्यु की देवता का तू साधन बनता है। तू अन्त करनेवाला है, मौत ही है। हे स्वप्न! उस तुझको हम तेरे ठीक रूप में जानते हैं। तू हमें दुःस्वप्नों की कारणभूत इस दुर्गति (निर्ऋति=विनाश) से बचा। २. हे स्वप्न! हम **ते जनित्रं विद्म**=तेरे उत्पत्ति-कारण को समझते हैं। तू **अभूत्याः पुत्रः असि**=अभूति का (want of power) शक्ति के अभाव का पुत्र है। शक्ति के विनाश के कारण तू उत्पन्न होता है। मृत्यु की देवता का तू साधन बनता है। तू अन्त करनेवाला है, मौत ही है। हे स्वप्न! उस तुझको हम तेरे ठीक रूप में जानते हैं। तू हमें दुःस्वप्नों की कारणभूत इस अभूति (शक्ति के विनाश) से बचा। ३. हे स्वप्न! हम **ते जनित्रं विद्म**=तेरे उत्पत्ति-कारण को जानते हैं। तू **निर्भूत्याः पुत्रः असि**=अनैश्वर्य (ऐश्वर्य के नष्ट हो जाने) का पुत्र है। धन के विनष्ट होने पर रात्रि में उस निर्भूति के कारण अशुभ स्वप्न आते हैं। हे स्वप्न! तू मृत्यु की देवता का साधन बनता है। तू अन्त करनेवाला है, मौत ही है। हे स्वप्न! हम तुझे तेरे ठीक रूप में जानते हैं। तू हमें दुःस्वप्नों की कारणभूत इस निर्भूति (अनैश्वर्य) से बचा। ४. हे स्वप्न! हम **ते जनित्रं विद्म**=तेरे उत्पत्ति-कारण को जानते हैं। तू **पराभूत्याः पुत्रः असि**=पराजय का पुत्र है। तू मृत्यु की देवता का साधन बनता है। तू अन्त करनेवाला है, मौत ही है। हे स्वप्न! तू हमें दुःस्वप्नों की कारणभूत इस पराभूति (पराजय) से बचा। ५. हे स्वप्न! हम **ते जनित्रं विद्म**=तेरे उत्पत्ति-कारण को जानते हैं। तू **देवजामीनां पुत्रः असि**=(देवः इन्द्रियाँ, जम् to eat) 'इन्द्रियों का जो निरन्तर विषयों का चरण (भक्षण) है' उसका पुत्र है। इन्द्रियाँ सदा विषयों में भटकती हैं तो रात्रि में उन्हीं विषयों के स्वप्न आते रहते हैं। इसप्रकार ये स्वप्न **यमस्य करणः**=मृत्यु की देवता के उपकरण बनते हैं। हे स्वप्न! तू तो **अन्तकः असि**=अन्त ही करनेवाला है, **मृत्युः असि**=मौत ही है। हे स्वप्न! **तं त्वा**=उस तुझको **तथा**=उस प्रकार, अर्थात् मृत्यु के उपकरण के रूप में **संविद्म**=हम जानते हैं, अतः हे स्वप्न! **सः**=वह तू **नः**=हमें **दुःष्वप्न्यात् पाहि**=दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत इन

'इन्द्रियों के निरन्तर विषयों में चरण' से बचा।

भावार्थ—'दुर्गति-अशक्ति-अनैश्वर्य-पराजय व इन्द्रियों का विषयों में भटकना' ये सब अशुभ स्वप्नों के कारण होते हुए शीघ्र मृत्यु को लानेवाले होते हैं। हम इन सबसे बचकर अशुभ स्वप्नों को न देखें और दीर्घजीवन प्राप्त करें।

६. [षष्ठं सूक्तम्]

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्, उषाः** ॥ छन्दः—**प्राजापत्याऽनुष्टुप्** ॥

विजय-पूजन-निष्पापता

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम्॥ १॥

१. **अद्य**=आज **अजैष्म**=हमने सब वासनाओं को जीता है। इसी उद्देश्य से **असनाम** (worship)=हमने प्रभुपूजन किया है और प्रभुपूजन द्वारा **वयम्**=हम **अद्य**=आज **अनागसः अभूम**=निष्पाप हुए हैं।

भावार्थ—हम सदा वासनाओं को पराजित करने के लिए यत्नशील हों। इस वासना-संग्राम में विजय के लिए प्रभु का पूजन करें। यह प्रभुपूजन हमें निष्पाप बनाएगा।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्, उषाः** ॥ छन्दः—**प्राजापत्याऽनुष्टुप्** ॥

दुःष्वप्नों का दूरीकरण

उषो यस्मादुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छतु॥ २॥

१. हे **उषः**=सब अन्धकारों का दहन करनेवाली उषे! **यस्मात्**=जिस **दुःष्वप्न्यात्**=दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत 'ग्राही, दुर्गति, अशक्ति, अनैश्वर्य, पराजय व इन्द्रियों की विषय-परायणता' आदि से **अभैष्म**=हम भयभीत होते हैं, **तत्**=वह सब **अप उच्छतु**=हमसे दूर हो।

भावार्थ—'उषाकाल में जाग जाना' स्वयं दुष्ट स्वप्नों से हमें बचाता है। दुष्ट स्वप्नों की कारणभूत दुर्गति आदि भी हमसे दूर हों।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्, उषाः** ॥ छन्दः—**प्राजापत्याऽनुष्टुप्** ॥

द्विषते-शपते

द्विषते तत्परा वह शपते तत्परा वह॥ ३॥

१. हे उषः! दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत जितने भी रोग, दुर्गति आदि तत्त्व हैं **तत्**=उनको **द्विषते**=द्वेष की वृत्तिवाले पुरुष के लिए, सबके साथ प्रीति न करनेवाले पुरुष के लिए, **परावह**=सुदूर ले-जानेवाली हो। **तत्**=उन दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत पदार्थों को **शपते**=आक्रोश करनेवाले क्रोधी स्वभाववाले पुरुष के लिए **परावह**=सुदूर ले-जा।

भावार्थ—दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत दुर्गति आदि तत्त्व द्वेष की वृत्तिवाले आक्रोशी पुरुष के लिए प्राप्त हों। न हम द्वेष करें, न शाप दें। इसप्रकार दुःष्वप्नों से बचे रहें।

ऋषिः—**यमः** ॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्, उषाः** ॥ छन्दः—**प्राजापत्याऽनुष्टुप्** ॥

सर्वाप्रियता

यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद्गमयामः॥ ४॥

१. **यम्**=जिस एक समाज-विरोधी पुरुष को हम सब **द्विष्मः**=प्रीति नहीं कर पाते **च**=और **यत्**=जो **नः द्वेष्टि**=हम सबके प्रति अप्रीतिवाला है **तस्मै**=उस सर्वाप्रिय पुरुष के लिए **एनत्**=इस दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत 'ग्राही, निर्ऋति' आदि को **गमयामः**=प्राप्त कराते हैं। २. वस्तुतः समाज

में जो सबका अप्रिय बन जाता है, वह सदा द्वेषाग्नि में जलता रहता है और परिणामतः भयंकर रोगों का शिकार हो जाता है। दुष्ट स्वप्नों को देखता हुआ यह अल्पायु हो जाता है।

भावार्थ—हम समाज में इसप्रकार शिष्टता व बुद्धिमत्ता से वर्तें कि सबके द्वेषपात्र न बन जाएँ। यह स्थिति नितान्त अवाञ्छनीय है। यह दुष्ट स्वप्नों व अल्पायुष्य का कारण बनती है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्, उषाः**॥ छन्दः—५ **साम्नीपङ्क्तिः**, ६ **निचृदार्चीबृहती**॥

उषा+वाक्, उषस्पति+वाचस्पति

उषा देवी वाचा संविदाना वाग्देव्युषसा संविदाना॥ ५॥

उषस्पतिर्वाचस्पतिना संविदानो वाचस्पतिरुषस्पतिना संविदानः॥ ६॥

१. 'हमारे जीवनों में गतमन्त्र में वर्णित सर्वाप्रियता न उत्पन्न हो जाए' इसके लिए हम प्रयत्न करें कि **उषाः देवी**=अन्धकार को दूर करनेवाली यह उषा **वाचा संविदाना**=स्तुति व ज्ञान की वाणियों के साथ मेलवाली हो—ऐकमत्यवाली हो, अर्थात् उषा में जागरित होकर हम प्रभु-स्तवनपूर्वक स्वाध्याय में प्रवृत्त हों। हमारी यह **वाग् देवी**=दिव्य गुणयुक्त वाणी **उषसा संविदाना**=उषा के साथ मेलवाली हो। उषाकाल में हम स्तोत्रों व ज्ञानवाणियों का ही उच्चारण करनेवाले बनें। २. प्रातः प्रबुद्ध होनेवाला व्यक्ति 'उषस्पति' है और ज्ञान की वाणियों का स्वामी बननेवाला व्यक्ति 'वाचस्पति' है। **उषस्पतिः वाचस्पतिना संविदानः**=उषस्पति वाचस्पति के साथ मेलवाला हो और **वाचस्पतिः उषस्पतिना संविदानः**=वाचस्पति उषस्पति के साथ मेलवाला हो, अर्थात् एक व्यक्ति केवल उषस्पति व केवल वाचस्पति ही न बने, वह 'उषस्पति और वाचस्पति' दोनों बनने का प्रयत्न करे। वह प्रातः जागरणशील भी हो और प्रातः प्रबुद्ध होकर प्रभु-स्तवनपूर्वक स्वाध्याय में प्रवृत्त हो।

भावार्थ—हमारे जीवनों में 'उषा व वाक्' का मेल हो। हम 'उषस्पति व वाचस्पति' दोनों बनने का प्रयत्न करें। हमारे जीवनों में प्रातःजागरण के साथ प्रभु-स्तवन व स्वाध्याय जुड़े हुए हों।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्, उषाः**॥ छन्दः—७ **द्विपदासाम्नीबृहती, ८ आसुरीजगती, ९ आसुरीबृहती**॥

प्रभु-प्राप्ति के लिए वर्जनीय बातें

तेऽमुष्मै परा वहन्त्वरायान्दुर्णाम्नः सदान्वाः॥ ७॥

कुम्भीकाः दूषीकाः पीयकान्॥ ८॥

जाग्रद्दुःष्वप्न्यं स्वप्नेदुःष्वप्न्यम्॥ ९॥

१. **ते**=वे गतमन्त्र में वर्णित 'उषस्पति+वाचस्पति' बननेवाले पुरुष **अमुष्मै**=उस प्रभु की प्राप्ति के लिए—प्रभु-प्राप्ति के उद्देश्य से—निम्न दुर्गुणों को अपने से **परा वहन्तु**=सुदूर (परे) प्राप्त करानेवाले हों। सबसे प्रथम **अरायान्**=(stingy, niggard) कृपणता की वृत्तियों को दूर करें। फिर **दुर्णाम्नः**=दुष्ट नामों को—अशुभ वाणियों को अपने से दूर करें तथा **सदान्वाः**=(सदा नृ=war, cry, shout, नुवति) हमेशा गालियाँ न देते रहे। २. **कुम्भीकाः** (swelling of the eyelids) पलकों के सदा सूजे रहने को हम दूर करें। शोक में क्रन्दन के कारण हमारी पलकें सदा सूजी न रहें। **दूषीकाः**=(rheum of the eyes) आँखों के मल को हम अपने से दूर करें, द्वेष आदि से आँखें मलिन न हों तथा **पीयकान्** (पीयते to drink) अपेय द्रव्यों (शराब आदि) के पीने की वृत्ति को अपने समीप न आने दें। ३. **जाग्रद् दुःष्वप्न्यम्**=जगाते हुए अशुभ स्वप्नों

को अपने से दूर करें तथा **स्वप्ने दुःष्वप्न्यम्**=सोते हुए अशुभ स्वप्नों को न लेते रहें। दिन में भी अशुभ कार्यों का ध्यान न आता रहे तथा रात्रि में स्वप्नावस्था में तो अशुभ बातों का ध्यान हो ही नहीं।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति कृपणता, अशुभवाणी व अपशब्दों से दूर रहता है। यह शोक व द्वेष में फँसकर आँखों को विकृत नहीं कर लेता। यह शराब आदि अपेय पदार्थों का ग्रहण नहीं करता। जागते व सोते यह अशुभ स्वप्नों को नहीं लेता रहता।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्, उषाः**॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्**॥

उपासक की तीन बातें

अनागमिष्यतो वरानवित्तेः संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान्॥ १०॥

१. हे प्रभु के उपासक! तू **अनागमिष्यतः**=उन सब उत्तम पदार्थों को जो आते प्रतीत नहीं होते **अमुच्याः**=छोड़नेवाला बन। प्रयत्न में तो कमी नहीं करना, परन्तु व्यर्थ की आशाएँ नहीं लगाए रखना। 'ये तो मिल गया है, ये भी मिल जाएगा' इस प्रकार नहीं सोचते रहना। २. साथ ही **अवित्तेः संकल्पान्**=अनैश्वर्य के संकल्पों को भी तू छोड़नेवाला हो। निर्धनता के आ जाने की आकांक्षाओं से डरते न रहना। **द्रुहः पाशान्**=द्रोह की भावना के पाशों को भी तू छोड़। किसी के विषय में द्रोह की भावना को अपने हृदय में स्थान न देना।

भावार्थ—प्रभु का उपासक भविष्य की उज्ज्वल कल्पनाओं में नहीं उड़ता रहता। निर्धनता के आ जाने के भय से घबराया नहीं रहता और कभी भी द्रोह की भावना से युक्त नहीं होता।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्, उषाः**॥ छन्दः—**त्रिपदायवमध्यागायत्री, आर्च्युनुष्टुब्बा**॥

वध्रिः, न विथुरः, साधुः

तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वध्रिर्यथासद्विथुरो न साधुः॥ ११॥

१. हे **अग्ने**=अग्रणी प्रभो! **अमुष्मै**=उस उल्लिखित साधक के लिए **देवाः**=सब देव **तत् परावहन्तु**='अनागमिष्यतो वरान्०' इत्यादि उपर्युक्त बातों को दूर करनेवाले हों। 'माता, पिता, आचार्य व अतिथि' रूप देव उसे इसप्रकार शिक्षित करें कि वह भविष्य की कल्पनाओं में उड़नेवाला न हो, निर्धनता की आकांक्षाओं से भयभीत न हो और द्रोह की भावना से जकड़ा हुआ न हो। २. इसे इसप्रकार शिक्षित कीजिए **यथा**=जिससे यह **वध्रिः असत्**=(वधति to kill) सब बुराइयों का संहार करनेवाला हो, **न विथुरः**=(विथुर A thief) चोर न बन जाए। **साधुः**=सब कार्यों को सिद्ध करनेवाला हो।

भावार्थ—माता, पिता, आचार्य व अतिथि हमें इसप्रकार शिक्षित करें कि हम ख्याली पुलावों को ही न पकाते रहें, आनेवाली विपत्तियों से भयभीत भी न हुए रहें और द्रोहशून्य बनें। बुरायों का संहार करें, चोर न बनें और सब कार्यों को सिद्ध करनेवाले हों।

७. [सप्तमं सूक्तम्]

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**१ पङ्क्तिः, २ साम्न्यनुष्टुप्, ३ आसुर्युष्णिक्, ४ प्राजापत्यागायत्री**॥

द्वेष से विनाश

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि
पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं विध्यामि॥ १॥

देवानामेनं घोरैः क्रूरैः प्रैषैरभिप्रेष्यामि॥ २॥
वैश्वानरस्यैनं दंष्ट्रयोरपि दधामि॥ ३॥
एनानेवाव सा गरत्॥ ४॥

१. पञ्चम मन्त्र में कहेंगे कि 'योऽस्मान् द्वष्टि'=जो हमारे साथ द्वेष करता है, **तेन**=उस हेतु से अथवा उस द्वेष से **एनं विध्यामि**=इस द्वेष करनेवाले को ही विद्ध करता हूँ। द्वेष करनेवाला स्वयं ही उस द्वेष का शिकार हो जाता है। **अभूत्या एनं विध्यामि**=शक्ति के अभाव से, शक्ति के विनाश से, इस द्वेष करनेवाले को विद्ध करता हूँ। **निर्भूत्या एनं विध्यामि**=ऐश्वर्य-विनाश से इसको विद्ध करता हूँ। **पराभूत्या एनं विध्यामि**=पराजय से इसे विद्ध करता हूँ। **ग्राह्याः एनं विध्यामि**=जकड़ लेनेवाले रोग से इसे विद्ध करता हूँ। **तमसा एनं विध्यामि**=अन्धकार से इसे विद्ध करता हूँ। यह द्वेष करनेवाला 'अभूति' इत्यादि से पीड़ित होता है। २. **एनं**=इस द्वेष करनेवाले को **देवानाम्**=विषयों की प्रकाशक इन्द्रियों की **घोरैः**=भयंकर **क्रूरैः** (undesirable) अवाञ्छनीय **प्रैषैः**=(crushing) विकृतियों से **अभिप्रेष्यामि**=अभिक्षिप्त (Hurt) करता हूँ। द्वेष करनेवाले की इन्द्रियों में अवाञ्छनीय विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ३. **वैश्वानरस्य**=उन सब मनुष्यों का हित करनेवाले प्रभु की **दंष्ट्रयोः**=दाढ़ों में—न्याय के जबड़ों में **एनं अपिदधामि**=इस द्वेष करनेवाले को पिहित (क़ैद) कर देता हूँ। ४. **सा**=वह उल्लिखित मन्त्रों में वर्णित 'अभूति-निर्भूति०' इत्यादि बातें **एवा**=इसप्रकार शक्ति व ऐश्वर्य के विनाश के द्वारा या **अनेव**=किसी अन्य प्रकार से **अवगरत्**=इस द्वेष करनेवाले को निगल जाए।

भावार्थ—द्वेष करनेवाला व्यक्ति 'अभूति' आदि से विद्ध होकर इन्द्रियों की विकृति का शिकार होता है। यह प्रभु से भी दण्डनीय होता है। यह द्वेष की भावना किसी-न-किसी प्रकार इसे ही निगल जाती है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—५ **आर्च्युष्णिक्**, ६ **साम्नीबृहती**॥

समाज-विद्वेष=आत्मविद्वेष

योऽस्मान्द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टु यं वयं द्विष्मः स आत्मानं द्वेष्टु॥ ५॥
निर्द्विषन्तं दिवो निः पृथिव्या निरन्तरिक्षाद्भजाम॥ ६॥

१. हे प्रभो! **यः**=जो **अस्मान् द्वेष्टि**=हम सबके प्रति द्वेष करता है, **तम्**=उसको **आत्मा द्वेष्टु**=आत्मा प्रीति न करनेवाला हो। **यं वयं द्विष्मः**=जिसको हम सब प्रीति नहीं कर पाते **सः आत्मानं द्वेष्टु**=वह अपने से प्रीति करनेवाला न हो। वस्तुतः जो एक व्यक्ति सारे समाज के प्रति प्रीतिवाला न होकर स्वार्थसिद्धि को ही महत्त्व देता है, वह सारे समाज का अप्रिय होकर अन्ततः अपनी ही दुर्गति कर बैठता है। यह समाजविद्वेष आत्म-अवनति का मार्ग है, अतः यह समाज के प्रति द्वेष करनेवाला व्यक्ति आत्मा का ही द्वेष कर रहा होता है। २. **द्विषन्तम्**=इस द्वेष करनेवाले को **दिवः निर्भजाम**=द्युलोक से दूर भगा दें (भज to put to flight)। केवल द्युलोक से ही नहीं, **पृथिव्या निर् (भजाम)**=पृथिवीलोक से भी भगा दें तथा **अन्तरिक्षात् निः**=अन्तरिक्ष से भी दूर भगा दें। इस द्वेष करनेवाले का इस त्रिलोकी में स्थान न हो। त्रिलोकी में कोई भी इसका न हो। त्रिलोकी से दूर भगाने का यह भी भाव है कि इसका मस्तिष्क (द्युलोक), हृदय (अन्तरिक्ष) व शरीर (पृथिवी) सभी विकृत हो जाएँ। इसके मस्तिष्क हृदय व शरीर की शक्ति का भंग हो जाए। द्वेष का यह परिणाम स्वाभाविक है।

भावार्थ—समाजविद्वेष्य पुरुष वस्तुतः आत्मा की अवनति करता हुआ अपने से ही द्वेष

करता है। इसके लिए त्रिलोकी में स्थान नहीं रहता। यह 'शरीर, मन व मस्तिष्क' सभी को विकृत कर लेता है।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**७ याजुषीगायत्री, ८ प्राजापत्याबृहती**॥

सुयामन्+चाक्षुष

सुयामंश्चाक्षुष॥ ७॥

इदमहमामुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुःष्वप्न्यं मृजे॥ ८॥

१. मनुष्य को चाहिए कि वह द्वेष की भावना से ऊपर उठकर आत्महित का साधन करे। इस साधक को सम्बोधन करते हुए प्रभु कहते हैं कि हे **सुयामन्**=सम्यक् नियमन करनेवाले! और अतएव **चाक्षुष**=आत्मनिरीक्षण करनेवाले पुरुष! २. **अहम्**=मैं **आमुष्यायणे**=(well-born) तेरे-जैसे कुलीन पुरुष के जीवन में **अमुष्याः पुत्रे**=एक कुलीन माता के पुत्र में **इदं दुःष्वप्न्यम्**=इस दुष्ट स्वप्न के कारणभूत रोग, अशक्ति व अनैश्वर्य आदि को **मृजे**=शुद्धकर डालता हूँ। इन अभूति आदि को नष्ट कर देता हूँ।

भावार्थ—प्रभु अपने पुत्र जीव को इस रूप में सम्बोधित करते हैं कि तूने जीवन का नियमन करना है और आत्मनिरीक्षण करनेवाला बनना है। तू अपने को कुलीन प्रमाणित करना। माता के सुपुत्र तुझमें सब दुष्ट स्वप्नों के कारणभूत अभूति आदि को मैं विनष्ट किये देता हूँ।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**९, ११ साम्नीबृहती, १० साम्नीगायत्री**॥

दोष-विनाश

यददोऽदो अभ्यगच्छन्यद्दोषा यत्पूर्वा रात्रिम्॥ ९॥

यज्जाग्रद्यत्सुप्तो यद्दिवा यन्नक्तम्॥ १०॥

यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये॥ ११॥

१. प्रभु-प्रेरणा को सुनकर जीव उत्तर देता है कि **यत्**=जो **अदः अदः**=अमुक-अमुक दोष **अभ्यगच्छन्**=मेरे प्रति आता हो, **यत्**=जो दोष **दोषा**=रात्रि के समय आता है, **यत्**=जो **पूर्वं रात्रिम्**=रात्रि के पूर्वभाग में मुझे प्राप्त होता है। मेरे न चाहते हुए भी रात्रि के समय जिस दोष से मैं आक्रान्त हो जाता हूँ। २. अथवा **यत्**=जिस दोष को **जाग्रत्**=जागते हुए, **यत्**=जिस दोष को मैं **सुप्तः**=सोये हुए, **यत्**=जिस दोष को **दिवः**=दिन में और **यत्**=जिस दोष को **नक्तम्**=रात्रि में, ३. **यत्**=जिस दोष को **अहरहः**=प्रतिदिन **अभिगच्छामि**=मैं प्राप्त होता हूँ, **एनम्**=इस दोष को **तस्मात्**=संयम के द्वारा (सुयामन्), आत्मनिरीक्षण के द्वारा (चाक्षुष) तथा कुलीनता के विचार के द्वारा (आमुष्यामण) **अवदये**=सुदूर विनष्ट करता हूँ। (दय हिंसायाम्)।

भावार्थ—जो दोष मुझे रात्रि के समय आक्रान्त कर लेता है, या जिस दोष के प्रति मैं सोते-जागते चला जाता हूँ, उस दोष को 'संयम, आत्मनिरीक्षण व कुलीनता' के विचार से दूर करता हूँ—विनष्ट करता हूँ।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**१२ भुरिक्प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १३ आसुरीत्रिष्टुप्**॥

प्रभु का आदेश

तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि॥ १२॥

स मा जीवीत्तं प्राणो जहातु॥ १३॥

१. दोषविनाश के लिए पुत्र द्वारा की गई प्रतिज्ञा को सुनकर प्रभु उसे उत्साहित करते हुए कहते हैं कि **तं जहि**=उस दोष को नष्ट कर डाल और **तेन**=उस दोषविनाश से **मन्दस्व**=आनन्द का अनुभव कर। तुझे दोषविनाश में ही आनन्द प्राप्त हो। **तस्य**=उस दोष की, **पृष्टीः अपि**=पसलियों को भी **शृणीहि**=नष्ट कर डाल। २. **सः मा जीवीत्**=वह मत जीवे। **तं प्राणो जहातु**=उसको प्राण छोड़ जाए। यहाँ दोष को पुरुषविध कल्पित करके उसे विनष्ट करने का उपदेश दिया गया है।

भावार्थ—परमपिता प्रभु उपदेश देते हैं कि हे जीव! तू दोषविनाश में ही आनन्द लेनेवाला बन। दोषरूप पुरुष की पसलियों को तोड़ दे, उसे निष्प्राण कर दे।

८. [अष्टमं सूक्तम्]

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—**१ एकपदायजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्, २ त्रिपादानिचृद्गायत्री, ३ प्राजापत्यागायत्री, ४ त्रिपदाप्राजापत्यात्रिष्टुप्**॥

जितम्-उद्भिन्नम्, मृतम्

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकंमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ऽरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्॥ १॥

तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः॥ २॥

स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि॥ ३॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ ४॥

१. (क) **अस्माकं जितम्**=हमारी विजय हो—हम अन्तः व बाह्य शत्रुओं को जीतनेवाले बनें। इन शत्रुओं को जीतकर **उद्भिन्नम् अस्माकम्**=हमारा उत्थान हो। जिस प्रकार पृथिवी को विदीर्ण करके अंकुर ऊपर आ जाता है, उसी प्रकार हम शत्रुओं को विदीर्ण करके ऊपर उठनेवाले हों। **ऋतम् अस्माकम्**=शत्रुओं को पराजित करके हम ऋत को प्राप्त करें। हम अपनी सब भौतिक क्रियाओं में सूर्य-चन्द्र की भाँति ऋत का पालन करें। असमय में भोजनादि करने से रोगों के कारण हम मृत्यु का शिकार न हो जाएँ। (ख) **तेजः अस्माकम्, ब्रह्म अस्माकम्**=शत्रु-विजय के परिणामस्वरूप ही हमारा तेज हो और हमारा ज्ञान हो। यह शत्रु-विजय हमें शरीर में तेजस्वी बनाए और मस्तिष्क में ज्ञानदीप्त। (ग) तेजस्वी व ज्ञानदीप्त बनने पर **स्वः अस्माकम्, यज्ञः अस्माकम्**=हमारे हृदय में आत्मप्रकाश हो तथा हमारे हाथों में यज्ञ हों। जहाँ हृदय में हम आत्मप्रकाश को देखें, वहाँ हाथों से सदा यज्ञों में प्रवृत्त रहें। (घ) अब इन यज्ञों के होने पर **अस्माकं पशवः, अस्माकं प्रजाः, अस्माकं वीराः**=हमारे पास उत्तम पशु हों, हमारी सन्तानें उत्तम हों और हमारे सब पुरुष वीर हों। २. **तस्मात्**=अपनी प्रजाओं व वीरों को उत्तम बनाने के द्वारा **अमुम् निर्भजामः**=हम उस शत्रु को दूर भगा देते हैं, **आमुष्यायणम्**=जो अमुक गोत्र का है, **अमुष्या पुत्रम्**=अमुक का पुत्र है, **असौ यः**=जो वह है। ३. **सः**=वह हमारा शत्रु **ग्राह्याः पाशात्**=जकड़ लेनेवाले रोग के पाश से **मा मोचि**=मत छूटे। यह शत्रुता का भाव ही उसके इन रोगों का कारण बने। ४. **तस्य**=उसके **इदम्**=इस **वर्चः तेजः प्राणं आयुः**=वीर्य, बल, प्राणशक्ति व आयु को **निवेष्टयामि**=मैं वेष्टित किये लेता हूँ—घेर लेता हूँ और **इदम्**=(इदानीम्) अब **एनम्**=इसको **अधराञ्चं पादयामि**=नीचे गिरा देता हूँ—पाँव तले रौंद डालता हूँ। शत्रुओं को जीतकर ही सब प्रकार की उन्नति सम्भव है।

भावार्थ—इस जीवन में विजय व उन्नति को प्राप्त होते हुए हम ऋत का पालन करें। शरीर

में तेजस्वी हों, मस्तिष्क में ज्ञानपूर्ण, हृदय में आत्मप्रकाशवाले व हाथों में यज्ञोंवाले बनें। हमारे पशु, प्राण व वीर सब उत्तम हों। शत्रुओं को हम पराजित कर दूर भगा दें। वे शत्रु शत्रुता के कारण ही रोगों का शिकार हो जाएँ। उनके वीर्य, बल, प्राण व आयु को हम नष्ट कर सकें। उन्हें पराजित करके उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**दुःष्वप्ननाशनम्**॥ छन्दः—५-९ **एकपदायजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्, त्रिपदानिचृद्गायत्री, त्रिपदाप्राजापत्यात्रिष्टुप्, ५-७ (सर्वेषां तृ०) आसुरीजगती, ८ (सर्वेषां तृ०) आसुरीत्रिष्टुप्, ९ (सर्वेषां तृ०) आसुरीपङ्क्तिः**॥

शत्रुता का दुष्परिणाम

जितस्मस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामो ऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ ५॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सोऽभूत्याः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ ६॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ ७॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ ८॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञो३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स देवजामीनां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ ९॥

१. हम विजय व उन्नति आदि दशों रत्नों को प्राप्त करें। इसी उद्देश्य से शत्रु को परास्त करें। **सः**=वह शत्रु शत्रुता के कारण ही '**निर्ऋत्याः**=दुर्गति, **अभूत्याः**=शान्ति का अभाव, **पराभूत्याः**=पराजय व **देवजामीनां**=इन्द्रियों की विषयासक्ति' के **पाशात्**=पाशों से **मा मोचि**=मत मुक्त हो। हम उसके वीर्य, बल, प्राण व आयु को घेरकर उसे परास्त करने में समर्थ हों।

भावार्थ—हमारा शत्रु, इस शत्रुता के कारण ही, 'दुर्गति, शक्ति-अभाव, अनैश्वर्य, पराजय व विषयासक्ति' के पाशों में जकड़ा जाकर नष्ट हो जाए। हम उसे पराजित कर पाएँ।

ऋषिः—यमः॥ देवता—दुःष्वप्ननाशनम्॥ छन्दः—१०-१७ एकपदायजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्, त्रिपदानिचृद्गायत्री, त्रिपदाप्राजापत्यात्रिष्टुप्, १२ (सर्वेषां तृ०) आसुरीजगती, १०,११,१३,१४,१६ (सर्वेषां तृ०) आसुरीत्रिष्टुप्, १५,१७ (सर्वेषां तृ०) आसुरीपङ्क्तिः॥

अध्यात्म शत्रुओं का प्रतीकार

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽ३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स बृहस्पतेः पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ १०॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽ३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स प्रजापतेः पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ ११॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽ३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स ऋषीणां पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ १२॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽ३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स आर्षेयाणां पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ १३॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽ३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सोऽङ्गिरसां पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ १४॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽ३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स आङ्गिरसानां पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ १५॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽ३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सोऽथर्वणां पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ १६॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽ३ऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ १७॥

१. हम विजय आदि दशों रत्नों को प्राप्त करें। उसके लिए हम काम-क्रोधादि आध्यात्म शत्रुओं को जीतनेवाले बनें। **सः**=वह 'काम'-रूप शत्रु **बृहस्पते पाशात् मा मोचि**=बृहस्पति के पाश से मुक्त न हो। हम इस कामरूप शत्रु के वीर्य, बल, प्राण व आयु को घेरकर उसे परास्त करने में समर्थ हों। बृहस्पति ज्ञान का स्वामी है। बृहस्पति के पाश में जकड़ने का भाव है 'ज्ञान की रुचिवाला' बनना। ज्ञान की रुचिवाला बनते ही वह पुरुष काम का विध्वंस कर पाता है। २. इसीप्रकार क्रोधरूप शत्रु है। **सः**=वह **प्रजापतेः पाशात्**=प्रजापति के पाश से **मा मोचि**=मत छोड़ा जाए। 'प्रजापति' में सन्तानों के रक्षण की भावना है। इस भावना के प्रबल होने पर हम क्रोध से ऊपर उठते हैं। क्रोध विनाश का कारण बनता है—न कि पालन का। ३. तीसरा शत्रु लोभ है। **सः**=वह **ऋषीणाम्**=ऋषियों के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। ऋषियों के पाश में हम अपने को जकड़ते हैं, तो लोभ विनष्ट हो जाता है। ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं—विचारशील हैं। 'कस्य स्विद्धनम्' इस बात का विचार करने पर लोभ स्वतः ही नष्ट हो जाता है। **सः**=वह लोभरूप शत्रु **आर्षेयाणाम्**=ऋषिकृत ग्रन्थों के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। ऋषिकृतग्रन्थों का अध्ययन हमें लोभ से ऊपर उठाता ही है। ४. चौथा 'मोह' रूप शत्रु है। **सः**=वह **अङ्गिरसाम्**=(प्राणो वा अङ्गिरसाः—श० ६.१.२.२८) प्राणों के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। प्राणसाधना करते हुए हम मोह से ऊपर उठें। प्राणसाधना वैचित्य को (मुह वैचित्ये) दूर करती ही है। एवं, प्राणसाधक वस्तुओं को ठीकरूप में देखता हुआ मोह में नहीं फँसता। **सः**=वह मोहरूप शत्रु **आङ्गिरसानाम्**=(स वा एष आंगिरसाः 'अन्नाद्यम्' अतो हीमान्यंगानि रसं लभन्ते। तस्मादांगिरसः—जै० ३.२.११.९) आद्य अन्नों के **पाशात् मा मोचि**=बन्धन से मत मुक्त हो। यदि हम खाने योग्य सात्त्विक अन्नों का ही प्रयोग करेंगे तो हमारा मन भी सात्त्विक भावना से ओत-प्रोत होने से मोह में न फँसेगा। एवं मोह से ऊपर उठने के लिए 'अङ्गिरा व आङ्गिरसों' के पाश में हमें अपने को जकड़ना चाहिए। प्राणसाधना करें व आद्य अन्न का सेवन करें तभी हमारा मोह (वैचित्य='अज्ञान') नष्ट होगा। ५. पाँचवाँ 'मद' हमारा शत्रु है। **सः**=वह **अथर्वणाम्**=(अथ अर्वाङ्) आत्मनिरीक्षण करनेवालों के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। यदि हम आत्मनिरीक्षण करनेवाले बनेंगे तो कभी मदवाले न होंगे। दूसरों को देखते रहने पर ही अपने दोष नहीं दिखते और अभिमान (मद) की उत्पत्ति होती है। इसीप्रकार 'मत्सर' शत्रु है। **सः**=वह **आथर्वणानाम्**=आथर्वणों के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। (अ+थर्व् to go, move) आथर्वण, अर्थात् स्थिरवृत्ति के बनकर हम मत्सर से ऊपर उठें। हमें औरों की सम्पत्ति को देखकर जलन न हो।

भावार्थ—ज्ञानरुचिता हमें 'कामवासना' पर विजयी बनाए। प्रजापतित्व की भावना हमें क्रोध से ऊपर उठाकर प्रेममय बनाए। तत्त्वद्रष्टा बनते हुए व तत्त्वदर्शी पुरुषों के ग्रन्थों को पढ़ते हुए हम लोभ से ऊपर उठें। प्राणसाधना द्वारा हमारा मोह विनष्ट हो। इसके विनाश के लिए ही हम सात्त्विक अन्नों का प्रयोग करें। आत्मनिरीक्षण करते हुए हम 'मद' को नष्ट करें तथा स्थिरवृत्ति के बनकर मत्सर से आक्रान्त न हों।

ऋषिः—यमः॥ देवता—दुःष्वप्ननाशनम्॥ छन्दः—१८-२९ (प्र०), ३० एकपदा-यजुर्ब्राह्म्यनुष्टुप्, १८-२९ (द्वि०), ३१ त्रिपदानिचृद्गायत्री, १८-२९ (च०), ३३ त्रिपदा-प्राजापत्यात्रिष्टुप्, २०,२२,२७ (सर्वेषां तृ०) आसुरीजगती, २१ (सर्वेषां तृ०) आसुरीत्रिष्टुप्, १८,१९,२३-२६ (सर्वेषां तृ०), ३२ आसुरीपङ्क्तिः, २८,२९ (द्वयोः तृ०) आसुरी बृहती॥

शारीर 'रोगरूप' शत्रुओं का प्रतीकार

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ १८॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ १९॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स ऋतूनां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ २०॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स आर्तवानां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ २१॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स मासानां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ २२॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सो ∫ र्धमासानां पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ २३॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्। तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सो ∫ होरात्रयोः पाशान्मा मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ २४॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। सोऽह्नोः संयतोः पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ २५॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ २६॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ २७॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स मित्रावरुणयोः पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ २८॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्।
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः। स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा
मोचि। तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ २९॥
जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं
स्व ∫ रस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम्॥ ३०॥
तस्मादमुं निर्भजामोऽमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ यः॥ ३१॥
स मृत्योः पड्बीशात्पाशान्मा मोचि॥ ३२॥
तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्चं पादयामि॥ ३३।

१. हम विजय आदि दशों रत्नों को प्राप्त करें। इसी उद्देश्य से शरीर में उत्पन्न हो जानेवाले रोगरूप शत्रुओं को नष्ट करें। **सः**=वह रोगरूप शत्रु **वनस्पतीनां**=वनस्पतियों के **पाशात्**=पाशों से **मा मोचि**=मत मुक्त हो, अर्थात् वनस्पतियों का प्रयोग इन रोगों के नाश का कारण बने। **सः**=वह रोग **वानस्पत्यानाम्**=वनस्पति से प्राप्त पदार्थों के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो, अर्थात् वानस्पत्य भोजनों को करते हुए हम रोगों का शिकार न हों। २. **सः**=वह रोग **ऋतूनाम्**=ऋतुओं के **पाशात्**=पाश से **मा मोचि**=मत मुक्त हो। ऋतुचर्या का ठीक से पालन हमें रोगाक्रान्त होने से बचाए। **सः**=वह रोग **आर्तवानाम्**=उस-उस ऋतु में होनेवाले पदार्थों के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। हम ऋतु के पदार्थों का प्रयोग करते हुए नीरोग बने रहें। ३. **सः**=वह व्याधि **मासानां**=मासों के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। इसीप्रकार

सः=वह **अर्धमासानां**=अर्धमासों (पक्षों) के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। उस-उस मास व पक्ष के अनुसार अपनी चर्या को करते हुए हम नीरोग बनें। ४. **सः**=वह रोग **अहोरात्र्योः**=दिन-रात के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। **सः**=वह **संयतो अह्नोः**=(be formed in rows) क्रम में स्थित दिनों के **पाशात्**=पाश से **मा मोचि**=मत मुक्त हो। 'दिन के बाद रात और रात के बाद दिन' इसप्रकार दिन-रात चलते ही रहते हैं। दिन कार्य के लिए है और रात्रि आराम के लिए। इनके व्यवहार के ठीक होने पर रोगों से बचाव रहता है। यह 'काम और आराम' का क्रम टूटते ही रोग आने लगते हैं। 'रात्रौ जागरणं रूक्षं स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा'। ५. **सः**=वह रोग **द्यावापृथिव्योः**=द्यावापृथिवी के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। 'द्यावा' मस्तिष्क है, 'पृथिवी' शरीर है। हम इन्हें क्रमशः दीप्त व दृढ़ बनाएँ और इसप्रकार नीरोग जीवनवाले हों। **सः**=वह रोग **इन्द्राग्न्योः**=इन्द्र और अग्नि के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। 'इन्द्र' जितेन्द्रियता का प्रतीक है, 'अग्नि' प्रगति का। जितेन्द्रियता व प्रगतिशीलता हमें नीरोग बनाएँ। **सः**=वह **मित्रावरुणयोः**=मित्र और वरुण के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। हम मित्र=स्नेहवाले व वरुण=निर्द्वेष बनकर रोगों के शिकार होने से बचें। **सः**=वह रोग **राज्ञः वरुणस्य**=राजा वरुण के **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। 'राजा' का भाव है—व्यवस्थित जीवनवाला (well regulated) और अतएव वरुण=श्रेष्ठ व्यक्ति रोगों का शिकार नहीं होता। ६. **सः**=वह रोग **मृत्यो पड्बीशात्**=मृत्यु के पादबन्धनरूप **पाशात् मा मोचि**=पाश से मत मुक्त हो। जब हम इस बात को भूलते नहीं कि 'यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया'। हमें पैदा होने के साथ ही मृत्यु उत्तम पाशों से जकड़ लेती है तो हम युक्ताहार-विहार करते हुए स्वस्थ बने रहते हैं और उन्नतिपथ पर आगे बढ़ते हैं।

भावार्थ—नीरोग बनने का मार्ग यह है कि (क) हम वानस्पतिक पदार्थों का ही सेवन करें। (ख) ऋतुचर्या का ध्यान करें। (ग) प्रत्येक मास व पक्ष का ध्यान करते हुए हमारा खान-पान हो। (घ) दिन में सोएँ नहीं, रात्रि में जागें नहीं। (ङ) मस्तिष्क और शरीर दोनों का ध्यान करें। (च) जितेन्द्रिय व प्रगतिशील हों। (छ) स्नेह व निर्द्वेषता को अपनाएँ। (ज) व्यवस्थित जीवनवाले हों। (झ) मृत्यु को न भूल जाएँ।

९. [नवमं सूक्तम्]

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**प्रजापतिः**॥ छन्दः—**आर्च्यनुष्टुप्**॥

शत्रुसैन्याभिभव

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्य ष्ठां विश्वाः पृतना अरातीः॥ १॥

१. गतसूक्त के अनुसार बाह्य शत्रुओं को, काम, क्रोध आदि मानस शत्रुओं को तथा शारीर रोगों को दूर करके **अस्माकं जितम्**=हमारा विजय हो। **अस्माकम् उद्भिन्नम्**=हमारा उदय-ही-उदय होता चले। **विश्वाः**=सब **अरातीः पृतनाः**=शत्रु-सेनाओं को **अभ्यष्ठाम्**=मैंने पादाक्रान्त किया है—उनपर अधिष्ठित हुआ हूँ। इनको पराजित करके ही तो विजय व उन्नति सम्भव होता है।

भावार्थ—शत्रु-सैन्यो का पराभव करके हम संसार में विजयी व उन्नत बनें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**मन्त्रोक्ताः**॥ छन्दः—**आर्च्युष्णिक्**॥

अग्नि+सोम

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मा धात्सुकृतस्य लोके॥ २॥

१. **तत्**=गतमन्त्र में कही गई उस बात को कि 'हमारा विजय हो, हमारा उदय हो, मैं

सब शत्रुसैन्यों को पादाक्रान्त करता हूँ' **अग्निः आह**=अग्नि कहता है। आगे बढ़ने की वृत्तिवाला पुरुष ही विजय व उदय की बात को कह सकता है। **उ**=और **तत्**=उस बात को **सोम**=सौम्य स्वभाव का, निरभिमान पुरुष **आह**=कहता है। अग्नि की तेजस्वितावाला, परन्तु शान्त व्यक्ति ही विजय व उदय को सिद्ध कर पाता है। २. यह प्रार्थना करता है कि **पूषा**=वह सबका पोषक प्रभु **मा**=मझे **सुकृतस्य लोके धात्**=पुण्य के प्रकाश में धारण करे। प्रभु के अनुग्रह व प्रेरणा से मैं कभी भी पुण्य के मार्ग से विचलित न होऊँ।

भावार्थ—अग्नि व सोम का अपने में समन्वय करता हुआ मैं निरन्तर विजयी व उन्नत बनूँ। प्रभु मुझे सन्मार्ग में स्थापित करें।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**सूर्यः**॥ छन्दः—**साम्नीपङ्क्तिः**॥

सूर्यस्य ज्योतिषा

अगन्म स्वः स्व रगन्म सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म॥ ३॥

१. **स्वः**=(Water आपः=रेतः) हमने वासनाओं को पराजित करके शरीर में रेतःकणों को **अगन्म**=प्राप्त किया है। इन सुरक्षित रेतःकणों से ज्ञानाग्नि की दीप्ति होने पर **स्वः अगन्म**=(Radiance, lustre) हमने ज्ञानज्योति को प्राप्त किया है। २. **सूर्यस्य**=उस आदित्यवर्ण सूर्यसम ज्योति 'ब्रह्म' (ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः) की **ज्योतिषा**=ज्ञानदीप्ति से **सम् अगन्म**=हम संगत हुए हैं।

भावार्थ—सन्मार्ग में चलते हुए हम रेतःकणों के रक्षण से ज्ञानप्रकाश को प्राप्त करें। प्रकाश को ही क्या उस सूर्यसम ज्योति ब्रह्म के ज्ञान से संगत हों।

ऋषिः—**यमः**॥ देवता—**सूर्यः**॥ छन्दः—**परोष्णिक्**॥

वसु-प्राप्ति

वस्योभूयाय वसुमान्यज्ञो वसु वंशिषीय वसुमान्भूयासं वसु मयि धेहि॥ ४॥

१. **वस्यः भूयाय**=ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए **वसुमान् भूयासम्**=मैं प्रशस्त वसुवाला बनूँ। मेरा धन प्रशस्त हो, अर्थात् धन का विनियोग प्रशंसनीय रूप में ही करूँ। वह भोगविलास में व्ययित न होकर लोकहित के कार्यों में—यज्ञों में व्ययित हो। मैं इस बात को न भूल जाऊँ कि **वसुमान् यज्ञः**=यज्ञ प्रशस्त धनवाला है, अर्थात् यज्ञों में धन का विनियोग धन को बढ़ानेवाला ही है। **वसु वंशिषीय**=मैं वसु का संभजन (वन् संभक्तौ) करनेवाला बनूँ। धन को प्रशस्तरूप में बढ़ानेवाली दो ही बातें हैं कि वह यज्ञों में विनियुक्त हो तथा हम धन का समुचित संविभाग करनेवाले बनें। समुचित संविभाग यही है कि उसमें आधार देने योग्य लूले-लंगड़े व्यक्तियों को भी भाग प्राप्त हो। लोकोहित के कार्यों में लगे हुए लोग भी उसमें भाग प्राप्त करें तथा राजा को भी उसमें से उचित कर मिले। आध्रश्चिद्यं मन्यमानः तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं मक्षीत्याह। हे प्रभो! इस प्रकार धन का समुचित संविभाग करनेवाले **मयि**=मुझमें वसु **धेहि**=प्रशस्त धन धारण कीजिए।

भावार्थ—हम धनों का यज्ञों में विनियोग करें तथा धनों का उचित संविभाग करते हुए प्रशस्त धनों के पात्र बनें।

इति षोडशं काण्डम्॥